श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास ५

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

बृहद्शांति (चालु)

(४) ॐ रोहिणी-प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी-गान्धारी-सर्वास्त्रामहाज्वाला-मानवी-वैरोट्या-अच्छुप्ता-मानसी-महामानसी षोडशविद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ।।७।।

-: शब्दार्थ :-

स्पष्ट है ।

अर्थ-संकलना : ॐ रोहिणी,प्रज्ञप्ति,वज्रशृङ्खला वज्राङ्कुशी, अप्रतिचक्रा,पुरुषदत्ता,काली,महाकाली, गौरी,गान्धारी,सर्वास्त्रामहाज्वाला,मानवी,वैरोट्या,अच्छुप्ता,मानसी और महामानसी ये सोलह विद्यादेवीओ तुम्हारा रक्षण करो । स्वाहा.....७

मूल -

(५) ॐ आचार्योपाध्याय-प्रभृति, चातुर्वर्णस्य श्री श्रमण, सङ्घस्य शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भुवतु पुष्टिर्भवतु ।।८।।

-: शब्दार्थ :-

ॐ - ॐ

आचार्योपाध्याय-प्रभृति-चातुर्वर्णस्य- - आचार्य उपाध्याय वगैरह चार वर्णवाले

श्री श्रमण-संघस्य - श्री श्रमण संघ को

शांन्ति - शांति

भवतु - हो

तृष्टीः - तुष्टि (तोष,संतोष)

भवतु - हो

पुष्टि - पुष्टि (पोषण,वृद्धि)

भवतु - हो

अर्थ-संकलना :- **ॐ** आचार्य, उपाध्याय वगैरह चार प्रकार के श्री श्रमण संघ को शांति हो....तुष्टि हो.....पुष्टि हो.....८

(६) ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतु-सहिताः सलोकपालाः सोम-यम-वरुण-कुबेर-वासवादित्य-स्कन्द-विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्राम-नगर-क्षेत्र-देवताऽयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्तां अक्षीण-कोश-कोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ।।९।।

-: शब्दार्थ :-

ॐ - ॐ

ग्रहाश्चन्द्र,सूर्याङ्गारक,बुध,बृहस्पति,शुक्र, शनैश्चर,राहु,केतु,सहिताः - चंद्र,सूर्य, मंगल, बुध गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु सहति

सलोकपालाः - लोकपालो सहित

सोम,यम,वरुण,कुबेर,वासवादित्य, स्कन्द,विनायकोपेता - सोम,यम,वरुण, कुबेर, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय और विनायक सहित

चे - और

अन्ये अपि - दूसरे भी

ग्राम-नगर,क्षेत्र-देवतादयः - ग्रामदेवता, नगरदेवता, क्षेत्रदेवता वगैरह

ते - वे

सर्वे - सभी

प्रीयन्ता प्रियन्ताम् - प्रसन्न हो प्रसन्न हो

अक्षीण-कोश-कोष्ठागार - अक्षय कोष और भंडारवाले

नरपतय - राजाओ

च - और

भवन्तु - हो

स्वाहा - स्वाहा

अर्थ-संकलना - **ॐ** चंद्र, सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू, केतु वगैरह ग्रहो, लोकपालो - वे सोम,यम, वरुण, कुबेर,इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय, गणपति वगैरह देवो तथा ग्राम देवता, नगर देवता, क्षेत्र देवता वगैरह दूसरे

जो भी द हों वे सभी प्रसन्न हो, प्रसन्न हो तथा राजाओ अक्षय कोष तथा भंडार वाले हो । स्वाहा.....९

मूल -

(७) **ॐ पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन सम्बन्धि-बन्धुवर्ग-सहिता नित्यं आमोद-प्रमोद-कारिणः (भवन्तु स्वाहा) ।।१०।।**

-: शब्दार्थ :-

ॐ - ॐ

पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन सम्बन्धि -बन्धुवर्ग-सहिता - पुत्र,मित्र,भाई,स्त्री,हितैषी, स्वजन,स्नेहीजन तथा सगे-संबंधी सहित

नित्यं - प्रतिदिन

आमोद-प्रमोद-कारिणः - आनंद,प्रमोद करने वाले सुखी

भवन्तु - हो

स्वाहा - स्वाहा

अर्थ-संकलना - ॐ तुम पुत्र (पुत्री), मित्र, भाई (बहन), भार्या, हितैषी, स्वजन, स्नेहीजनो और सगेसंबंधी सहित आनंद प्रमोद करने वाले सुखी हो ।.....१०

मूल -

(८) अस्मिंश्च भूमण्डला, आयतन-निवासि-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाणां रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-दुर्भिक्ष-दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ।।११।।

-: शब्दार्थ :-

अस्मिन् - आ

च - और

भूमंडल - भूमंडल में /भू-अनुष्ठानभूमि का मध्यभाग

मंडल - उसके आसपास की जगह । स्नात्र विधि करते समय जिस जगह की मर्यादा बांधी हो उसे भूमंडल कहा जाता है ।

आयतन-निवासि-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाणां - स्वयं के स्थान में रहे हुये साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं के

रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-दुर्भिक्ष-दौर्मनस्योपशमनाय - रोग, उपसर्ग, व्याधि,दुःख, दुष्काल, और विषाद के उपशमन द्वारा

शान्ति - शांति

भवन्तु - हो

अर्थ-संकलना - और इस भूमंडल में स्वयं के स्थान में रहे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल और विषाद के उपशमन द्वारा शांति हो.....।।११।।

मूळ-

(९) ॐ तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः सदा, प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु, दुरितानि, शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ।।१२।।

-: शब्दार्थ :-

ॐ - ॐ

तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः - तृष्टि,पुष्टि,ऋद्धि,वृद्धि, मांगल्य और अभ्युदय
सदा - निरंतर
प्रादुर्भूतानि - उत्पन्न हुए
पापानि - पापकर्म
शाम्यन्तु - शांत हो, नाश हो
दूरितानि - भय, मुश्किल
शत्रवः - शत्रु
पराङ्मुखा - विमुख
भवन्तु - हो
स्वाहा - स्वाहा

अर्थ-संकलन - ॐ तुम्हें हमेशा तुष्टि हो, पुष्टि हो, ऋद्धि मिलो, वृद्धि मिलो, मांगल्य की प्राप्ति हो और तुम्हारा निरंतर अभ्युदय हो, तुम्हारे उत्पन्न हुए पापकर्मो का नाश हो, भय शांत हो उसी तरह तुम्हारे शत्रु भी विमुख हो ।.....स्वाहा १२

मूल -

(४. श्री शांतिनाथ-स्तुतिः)

(अनुष्टुप)

(१) श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश-मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ।।१३।।

-: शब्दार्थ :-

श्रीमते - श्रीमान, पूज्य
शान्तिनाथाय - श्री शान्तिनाथाय भगवान को
नमः - नमस्कार हो
शान्तिविधायिने - शांति करनेवाले
त्रैलोक्यस्य - तीनलोक के प्राणीओं को
अमराधीश - देवेन्द्र
मुकुट - मुकुट
अभ्यर्चिताङ्घ्रये - पूजे गये चरणवाले

अर्थ-संकलना - तीन लोक के प्राणिओं को शांति करने वाले और देवेन्द्रों के मुकुटों के द्वारा पूजीत चरणवाले पूज्य शांतिनाथ भगवान को नमस्कार हो.....१३

श्री दंडक प्रकरण - ५

श्री गजसार मुनि

समुद्घातद्वार

अेगिंदियाण केवल, तेउ आहारग विणा उ चत्तारि ।
ते वेउव्विय वज्जा, विगला सन्नीण ते चेव ।। १७ ।।

एकेन्द्रिय को, केवली, तैजस और आहारक इन तीन समुद्घात को छोडकर शेष चार समुद्घात होते है ।

ये तीन एवं वैक्रिय (ऐसे चार) छोडकर शेष तीन समुद्घात विकलेन्द्रिय और असंज्ञी को निश्चय से होते है ।

एकेन्द्रियों को केवलज्ञान की संभावना नहीं है अतः वहाँ केवली समुद्घात नहीं है । एकेन्द्रियों को तेजोलेश्या अथवा शीतलेश्या की लब्धि नहीं है अतः तैजस समुद्घात नहीं है, आहारक लब्धि भी न होने से आहारक समुद्घात भी नहीं है । सात समुद्घात में से तीन समुद्घात नहीं अतः चार समुद्घात होते है । (वैक्रिय समुद्घात केवल वायुकाय को होता है ।)

द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय को वैक्रिय लब्धि न होने से उन्हें उपरोक्त तीन - केवली, तैजस और और आहारक भी न होने से सिर्फ तीन समुद्घात संभवित है ।

समुद्घातद्वार (चालू) और १० दृष्टि द्वार

पण गभ तिरि सुरेसु, नारय वाउसु चउर तिय सेसे ।।
विगल दु दिट्ठी थावर, मिच्छित्ति सेस तिय दिट्ठी ।। १८ ।।

गर्भज तिर्यंच और देवता को (प्रथम) पांच, नारकी और वायुकाय को चार समुद्घात होते है ।

विकलेन्द्रिय को दो दृष्टि और स्थावर को एक मिथ्या दृष्टि ही होती है, शेष जीव भी तीन दृष्टि युक्त होती है ।

गर्भज तिर्यंच और देवताओं को आहारक लब्धि ही नहीं होती अतः उन्हें आहारक शरीर बनाने का न होने के कारण उन्हें आहारक समुद्घात होता ही नहीं । उसी तरह गर्भज तिर्यंच और देवों को केवलज्ञान न होने से केवली समुद्घात भी नहीं होता । अतः उन्हे पहले पांच समुद्घात ही होते है ।

दृष्टि

दृष्टि याने पदार्थ को समझने की और स्वीकार करने की अपनी मान्यता या झुकाव दृष्टि तीन प्रकार की होती है १) मिथ्यादृष्टि २) सम्यगदृष्टि ३) मिश्रदृष्टी

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से परमात्मा के वचनों पर श्रद्धा नहीं आती वह मिथ्यादृष्टि है ।

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय से परमात्मा के उपर श्रद्धा और आचरण में ला सके या न ला सके परंतु परमात्मा के वचनों में संपूर्ण श्रद्धा होती है वह सम्यगदृष्टि है ।

परमात्मा के वचनों में श्रद्धा भी न हो और अश्रद्धा भी न हो वह मिश्रदृष्टि है । मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से

जीव मिथ्यादृष्टि होता है ।

स्थावर याने एकेन्द्रिय जीव, जिसमें पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय को एक ही दृष्टि मिथ्यादृष्टि होती है ।

विकलेन्द्रिय याने द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चउरिन्द्रिय को मिथ्यादृष्टि और सम्यगदृष्टि ये दो दृष्टियाँ होती है ।

अन्य सभी जीवों को तीन दृष्टियाँ होती है ।

(११) दर्शन द्वार

थावर बितिसु अचक्खु, चउरिंदिसु तद्दुगं सुअे भणिअं ।।
मणुआ चउ दंसणिणो, सेसेसु तिंगं तिगं भणियं ।। १९ ।।

स्थावर, बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय को अचक्षुदर्शन होता है । सूत्र में चउरिन्द्रिय के लिये दो दर्शन कहे है । मनुष्य चार दर्शनवाले होते है । शेष को तीन तीन दर्शन कहे है ।

पदार्थ के सामान्य् धर्म को जानने की जीव की शक्ति दर्शन है ।

दर्शन चार प्रकार के बताये है -

१) चक्षुदर्शन - चक्षुद्वारा पदार्थ के सामान्य स्वरुप को धर्म को जानने की शक्ति चक्षुदर्शन है ।

२) अचक्षुदर्शन - चक्षु के बिना चार इन्द्रिय और मनद्वारा पदार्थ के सामान्य धर्म को जानने की शक्ति अर्थात अचक्षुदर्शन है ।

३) अवधिदर्शन - मर्यादा में रहे हुए रुपी पदार्थों के सामान्य धर्म को इन्द्रिय एवं मन के बिना जानने की जीव की शक्ति अवधिदर्शन है ।

४) केवलदर्शन - आत्मा द्वारा लोक-अलोक के तीनों काल के सभी रुपी-अरुपी द्रव्यों के सामान्य धर्म को समकाल में (एक ही समय में) जानने की जीव की शक्ति वह केवलदर्शन है ।

दर्शन		
दंडक संख्या	**दंडक के नाम**	**दर्शन**
७	**पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय**	**अचक्षुदर्शन**
१	**चउरिन्द्रिय**	**अचक्षु - चक्षुदर्शन**
१	**गर्भज मनुष्य**	**चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शन**
१८	**गर्भज तिर्यंच, १३ देवके, १ नारकी**	**चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शन**

(१२) ज्ञान और (१३) अज्ञान द्वार

अन्नाण नाण तिय तिय, सुर तिरि निरअे थिरे अन्नाण दुगं ।
नाणान्नाण दु विगले, मणुअे पण नाण तिअन्नाणा ।।२०।।

तीन अज्ञान और तीन ज्ञान देवता, तिर्यंच और नारकी को होते है । स्थावर को दो अज्ञान होते है । दो ज्ञान और दो अज्ञान विकलेन्द्रिय को होते है । मनुष्य को पांच ज्ञान और तीन अज्ञान होते है ।

पदार्थ के विशेष धर्म को जानने की जीव की शक्ति ही ज्ञान है ।

ज्ञान पाँच प्रकार के है - १) मतिज्ञान २) श्रुतज्ञान ३) अवधिज्ञान ४) मनःपर्यवज्ञान ५) केवलज्ञान

मिथ्यादृषिट के ज्ञान को अज्ञान कहते है, मिथ्यादृष्टि को तीन ही ज्ञान होते है अतः वे तीनो मिथ्यादृष्टि के अज्ञान है । ये तीन प्रकार के अज्ञान इस प्रकार है -

१) मतिअज्ञान २) श्रुतअज्ञान ३) विभंगज्ञान

ज्ञान/अज्ञान			
दंडक संख्या	दंडक के नाम	ज्ञान	अज्ञान
१५	१३ देवोंका, तिर्यंच नारकी	मति-श्रुत-अवधि (३)	मति-श्रुत-विभंग (३)
५	स्थावर, पृथ्वीकाय,अप्काय तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय	---	मति-श्रुत, अज्ञान (२)
३	विकलेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय	मति-श्रुतज्ञान (२)	मति-श्रुतअज्ञान (२)
१	गर्भज मनुष्य	मति,श्रृत-अवधि-मनःपर्यव और केवलज्ञान (५)	मति-श्रुत-अवधि (३)

(१४) योगद्वार

इक्कारस सुर निरअे, तिरिअेसु, तेर पन्नर मणुअेसु ।
विगले चउ पण वाअे, जोग तिगं थावरे होइ ।। २१ ।।

देवता ओर नारकी के विषय में ग्यारह योग होते है । गर्भज तिर्यंच के विषय में तेरह और मनुष्य को पंद्रह योग और वायुकाय को पांच योग होते है ।

योग याने आत्मा में होता हुआ स्फुरण, हलन, चलन, स्पंदन अथवा व्यापार । योग के मुख्य तीन भेद है

और उत्तर भेद पंद्रह है ।

(१) मनोयोग

१) सत्य मनोयोग
२) असत्य मनोयोग
३) सत्य-मृषा मनोयोग
४) असत्य-अमृषा मनोयोग

(२) वचन योग

१) सत्य वचनयोग
२) असत्य वचनयोग
३) सत्यासत्य वचनयोग
४) असत्य अमृषा वचनयोग

(३) काययोग

१) औदारिक काययोग
२) औदारिक मिश्रकाययोग
३) वैक्रिय काययोग
४) वैक्रियमिश्र काययोग
५) आहारक काययोग
६) आहारक मिश्रकाययोग
७) तैजस कार्मण काययोग

योग		
दंडक संख्या	**दंडक के नाम**	**योग**
१४	१० भवनपति, १ व्यंतर, १ ज्योतिषी १ वैमानिक एवं नारकी	औदारिक, औदारिक मिश्र तथा आहारक आहारक मिश्र ये चार छोडकर (११)
१	ग. तिर्यंच पंचेन्द्रिय	आहारक और आहारक मिश्र सिवाय (१३) योग होते है
१	ग. मनुष्य	सभी १५ योग होते है
३	विकलेन्द्रिय, बे-ते-चउरिन्द्रिय	(४) औदारिक, औदारिक मिश्र कार्मण काययोग एवं असत्य अमृषा वचनयोग
१	बादर - वायुकाय	(५) औदारिक, औदारिक मिश्र,वैकिय वैक्रिय मिश्र एवं कार्मण काययोग
४	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वनस्पतिकाय	(३) औदारिक, औदारिक मिश्र एवं कार्मण काययोग

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

आठवें गुणस्थान में श्रेणी द्वय

आठवें गुणस्थान से साधक मोक्षमार्ग की ओर आगे बढते है तब दो प्रकार के मार्ग है जो श्रेणी कहलाते है । एक मार्ग से साधक उपशम सम्यक्त्व से मोहनीयादि कर्मों को दबाते हुए....उपशमित करते हुए जाता है.... यह मार्ग उपशमश्रेणी कहलाता है ।

दुसरे मार्ग में कर्मों को दबाने के बजाय जीव कर्मक्षय करता हुआ आगे बढता है.... कर्म खपाता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है । यह मार्ग क्षपकश्रेणी कहलाता है ।

तत्रापुर्व गुणस्थाना - द्यंशादेवाधिरोहति ।
शमकोहि समश्रेणिं क्षपकः क्षपकावलीम् ।।३९।।

इस अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम अंश के अविरोहण में उपशमन करनेवाले साधु महात्मा शुक्लध्यान के प्रथम चरण का (जिसका स्वरुप आगे कहा जायेगा) ध्यान करने के पश्चात् भी उपशमश्रेणी करते है और क्षपक श्रेणी वाले क्षय करनेयोग्य प्रकृतियों का क्षय करते है ।

उपशमश्रेणी के योग्य कौन ?

दोनो श्रेणियों का आरंभ आठवे गुणस्थान से होता है । इनमें से उपशमश्रेणी कौन कर सकता है ? उपशमश्रेणी पर चढनेवाले की योग्यता क्या होती है ? यह बताते हुए कहते है -

पूर्वज्ञः शुद्धिमान् युक्तो ह्याद्यैः सहननैस्त्रिभिः ।
सन्ध्यायन्नाद्यशुक्लांशं स्वां श्रेणिं शमकः श्रयेत् ।।४०।।

पूर्वगत श्रुतज्ञान को धारण करनेवाला.... अतिचार रहित चारित्र का पालन करनेवाला.... पहले तीन संघयण में से कोई एक संघयण युक्त.....ऐसे साधु महात्मा उपशम श्रेणी पर आरुढ हो सकते है । उपशमश्रेणी वाला साधक काल करे तो कहाँ जा सकता है । मृत्यु जीवन की वास्तविकता है । वह कभी भी आकर उपस्थित हो सकता है । मोक्षप्राप्ति के नजीक पहुँचे हुए साधक के समक्ष आकर उसके संसार की वृद्धि कर सकता है । उपसमश्रेणी पर आरुढ साधु महात्मा का आयुष्य पूर्ण होता है, तो वह कहाँ पहुँचता है यह बताते हुए कहते है -

श्रेण्यारुढः कृतेकालेऽहमिंद्रे ष्वेवगच्छति ।
पुष्टायुषस्तूपशान्तं नयेच्चारित्रमोहनम् ।।४१।।

जो साधु अल्प आयु वाला है और उपशमश्रेणी पर आरुढ हुआ है और तब काल करे तो ''अहमिन्द्र''

याने ''सर्वार्थसिद्ध देवलोक'' में जाता है । क्योंकि वज्रश्रषभनाराच संघयणवाला जीव नियम से ''सर्वार्थसिद्ध में जाता है । दूसरे पांच संघयणवाले अन्य देवलोक में जाते है । छेवट्ठुं संघयण वाले साधक प्रथम चार देवलोक तक जाते है । किलीका संघयण वाले साधक पांचवे छठवे देवलोक तक जाते है । अर्ध नाराच संचयण वाले साधक सातवे, आठवें देवलोक तक जाते हैं ।(परंतु इन तीन संघयणवाले साधक उपशमश्रेणी पर आरुढ नहीं हो सकते) नाराच संघयणवाले नववे-दसवे देवलोक तक जाते है । प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण वाले मोक्ष तक जाते है ।

सर्वार्थसिद्धिवालों को **''लवसत्तामिया''** कहते है । क्योंकी उनका आयुष्य सातलव अधिक रहेता जो वे मोक्ष पहुँच जाते ।

यहाँ पर कोई शंका करता है की सात लव आयुष्य अधिक होने पर मोक्ष में कैसे जा सकता है ? इसका निराकरण करते हुए कहते है कि, सातलव अधिक के आयुष्य वाला उपशमश्रेणी वाला जीव ग्यारहवे गुणस्थान पर जाता है, वहाँ से पतन होकर सातवे में आता है वहाँ से क्षपकश्रेणी कर अंतकृत केवली होकर मोक्ष जा सकता है ।

उपशमश्रेणी वाले साधु आठवे और नौवे गुणस्थान में क्या करते है ?

उपशम श्रेणीवाले आरुढ हुए साधुमहात्मा बीस तरह कर्मप्रकृतियाँ उपशमित करते है यह बताते हुए कथन करते है -

अपूर्वादिद्वयकैक गुणेषु शमकः क्रमात् ।
करोति विंशतेः शातिं, लोभाणुत्वंचतत्समम् ।।४२।।

अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में संज्वलन लोभ को छोडकर मोहनीय की २० प्रकृतियों को उपशमश्रेणी वाला साधु उपशमित करता है । फिर सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में संज्वलन लोभ को सूक्ष्म करता है । उपशान्त मोह गुणस्थानक में सूक्ष्म लोभ को संपूर्णतया उपशमित करता है ।

इस उपशांतमोह गुणस्थानक में एक प्रकृतिबंध है, ५९ प्रकृतियों का उदय होता है.....५६ प्रकृतियों की उदीरणा होती है एवं१४८ की सत्ता होती है ।

उपशान्त मोह गुणस्थानक में सम्यक् चारित्र

उपशान्त मोह गुणस्थानक में किस प्रकार का दर्शन और चारित्र होता है यह बताते हुए कहते है -

शान्तद्दग्वृत्त मोहत्वादत्रौपशमिकाभिधे ।
स्यात सम्यकत्व चारित्रे भावश्चो पशमात्मकः ।।४३।।

उपशांतमोह गुणस्थानक में दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय को उपशमित करने से उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र उपशमभाव ना होने से होता है । परंतु क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अथवा चारित्र नहीं होता ।

उपशान्त मोहनीय च्यवन

पानी में मिट्टी आदि की मलीनता हो और उस पानी को स्थिर रखें तो मिट्टी नीचे बैठ जायेगी । मिट्टी पानी में है परंतु पानी स्थिर होने से उपर का पानी निर्मल दिखाई देगा । निमित्त मिल गया तों फिर से पानी मलीन हो जायेगा । ऐसी ही हालत होती है, उपशान्त मोह वाले की । मोह है मोह गया नहीं है । निमित्त मिलने पर मोह उछलता है, यह बात बताते हुए कहते है -

वृत्ति मोहोदयं प्राप्यो पशमीच्यवते ततः ।
अधःकृत मलन्तोयं पुनर्मालिन्यमश्नुते ।।४४।।

उपशम सम्यक्त्ववाला साधक चारित्र मोहनीय के उदय को प्राप्त कर उपशान्त मोह से नीचे पडता है । मोह जनित प्रमाद कलुषितता को प्राप्त कराता है । ऐसा कहा जाता है की, श्रुतकेवली, आहारकलाब्धि वाले एवं मनःपर्यवज्ञानी यदि उपशमी है तो प्रमाद से चारों गतियों में भ्रमण करते रहते है ।

उपशम के गुणस्थान में चढाव- उतार

अपूर्वाद्यास्त्रयोप्यूर्द्ध मेकंयान्तिसमोद्यताः ।
चत्वारोऽपिच्युतावाद्यं सप्तमंवान्त्यदेहिन : ।।४५।।

उपशम श्रेणीवाला साधक अपूर्वादिक तीन गुणस्थान में से एक एक गुणस्थान में जाता है, जिस तरह अपूर्व गुणस्थान में से अनिवृत्ति बादर में - अनिवृत्ति बादर से सूक्ष्मसंपराय में और सूक्ष्म संपराय से उपशान्त मोह गुणस्थान में ।

उपशान्तादि चार गुणस्थानों से च्यवकर मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है, परंतु जो चरमशरीरी है वह तो सातवें गुणस्थान में जाकर क्षपक श्रेणी करता है, परंतु जिसने एक भव में एक ही वक्त उपशम श्रेणी की है तो क्षपक श्रेणी कर सकता है परंतु जिसने एक भव में दो वक्त उपशमश्रेणी की हो वह जीव क्षपकश्रेणी नहीं करता ।

उपशमश्रेणी की संख्या बताते है -

उपशमश्रेणी जीव कितने वक्त कर सकता है ? इस शंका का समाधान करते हुए बताते है की.....

आ संसारं चतुर्वारं मेवस्याच्छमनावली ।
जीवस्यैकभवेवार द्वयंसायदिजायते ।।४६।।

जीव को इस अनादि सान्त संसार में परिभ्रमण करते हुए जो उपशमश्रेणी हो तो ज्यादा में ज्यादा चार बार होती है । यह उपशमश्रेणी एक जीव को एक भव में जो उत्कृष्ट से हो तो दो बार होती है ।

क्षपकश्रेणी तो भव में एक ही बार होती है ।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

(९) श्रीआर्यरक्षितसूरि

आबू के पास का दंताणी शहर.....

मंत्री द्रोण.....पत्नी देदी.....

एक बार वडगच्छ पट्टधर आचार्य जयसिंहसूरि पधारे.....

संघ के अग्रणी होने के बावजूद द्रोण-देदी रथयात्रा में नहीं आये..... सूरिजी के मन में ठेस लगी.... ऐसा क्यों हुआ? विचार करते-करते निद्राधीन हुए..... रात्रि में शासनदेवी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा की देदी के उदर से ज्योतिर्धर आचार्य का जन्म होगा.... आप उसे प्राप्त कर लेना..... उसके द्वारा जिनशासन का उद्योत होगा.....

दूसरे दिन सूरिजी ने द्रोण -देदी दंपति को बुलाया और रथयात्रा में अनुपस्थिति का कारण पूछा, उस समय देदी श्राविका ने कहा, ''सुखशीलता में विचरण करना यह क्या त्यागी साधु का कर्तव्य है ?''

देदी श्राविका के प्रश्न से विचलित हुए बिना गंभीरभाव से बोले ''भद्रे ! तुम्हारा उपालंभ योग्य है.... पंचमकाल के प्रभाव से हमारी यह स्थिति हुई है ।'' इसके साथ ही शासनदेवी के स्वप्न की बात बतायी, आने वाली संतान की याचना की ।

देदी श्राविका अत्यंत हर्षित हुई, ''मेरे पुत्र के हाथो से जिनशासन की प्रभावना होने वाली होगी तो मेरा इतना त्याग मैं सार्थक समझूंगी।'' ऐसा कहा तथा पुत्र को वोहराने की बात को स्वीकृति दी ।

शासनदेवी के स्वप्नानुसार देदी को गर्भ रहा उस रात देदी ने स्वप्न में गाय के दूध का पान किया.... शुभ शकुन से जन्मे बालक का नाम गोदुहकुमार रखने में आया, बालक तेजस्वी, चकोर एवं होशियार था । माता के पास से ज्ञान एवं संस्कार पाता बालक पांच बरस का हुआ ।

इसी समय फिर से सुरीश्वरजी का आगमन हुआ..... मातापिता के साथ वंदन करने गया बालक देवी संकेतानुसार दौडकर गुरु के आसन पर बैठ गया, बालक की ऐसी प्रवृति से सभी आश्चर्यचकित हुए । यह बालक आगे जाकर जिनशासन में विस्मृत हो रहे त्याग-वैराग्य के धर्म का उद्योत करेगा..... जैनधर्म में प्रवेश कर गये शिथिलाचार को दूर कर के सच्चे पंथ की पुनः स्थापना करेगा, इन विचारो से अत्यंत उत्साहित हुए माता-पिता ने बालक को भावभीनी विदाई दी ।

वि.सं. ११४२ में गुरु ने दीक्षा दी और उसका नाम विजय स्थापित किया । गुरुनिश्रा में रहकर विद्याभ्यास का प्रारंभ किया.... ज्ञान में आगे बढते हुए उन्होंने आगम का अभ्यास प्रारंभ किया.... दशवैकालिक सूत्र का अभ्यास करते हुए अनेक प्रश्न मन में उपस्थित होने लगे । अंत में शिष्य ने गुरु को पूछ ही लिया ''आगम यदि मुनियो को उबाला हुआ पानी ही वापरने का स्पष्ट आदेश देते है तो फिर हमारे उपाश्रय में कच्चे पानी के घडे भरकर रखते है, उसका क्या औचित्य है ?''

शिष्य का प्रश्न सुनकर गुरु चमके परंतु शिष्य के मन का समाधान करना भी आवश्यक था इसलीये कहा ''बहुत वर्षो पहले लिखे गये इन सूत्रो का पालन करना इस समय में बहुत दुष्कर है ।''

शिष्य ने तुरंत प्रश्न किया ''यदि शास्त्र में कहे अनुसार आचरण करे तो लाभ होगा या गैरलाभ होगा ?

''अलबत्ता लाभ ही होता है '' गुरु ने कहा ।

शिष्य ने नम्रता से कहा ''यदि आपश्री आज्ञा दे तो आगम अनुसार साधु जीवन जीकर उसी का सर्वत्र प्रचार करुं ?''

गुरु के समक्ष वर्षो पहले के प्रसंग स्मृतिपटल पर नजर आने लगे, शासनदेवी का संकेत और उसी उद्देश्य से माता-पिता का बालक को गुरुचरण में किया समर्पण ।

गुरु ने हृदय से आशीर्वाद देकर, पांच शिष्य साथ में देकर, उपाध्याय पद पर आरुढ करके शिष्य को भावभीनी विदाई दी ।

अनेक विघ्नो और विपत्तियो के बीच भी उपाध्याय विजयचंद्र अडिग रहे । सुखशीलता या सत्ता उन्हें चलायमान नहीं कर पायी, वे तो आगम प्रणीत समाचारी के समर्थ परिशोधक एवं पथदर्शक थे । जैन शासन को शिथिलाचार के नागपाश में से बचाने वे मथ रहे थे । न शुद्ध आहार मिलता न शुद्ध क्रिया में साथ मिलता, ऐसी परिस्थिति में उपाध्यायजी पावागढ पधारे, वीर प्रभु के दर्शन कर मासक्षमण की तपसाधना आरंभ की ।

शासनदेवी चकेश्वरी माताजी ने महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे श्री सीमंधरस्वामी को पूछा- ''भगवान ! इस काल में भरतक्षेत्र में आगमोक्त मार्ग की प्ररुपणा करने वाले कोई मुनि है या नहीं ?''

जवाब में भगवान ने कहा ''हे शासनदेवी ! भरतक्षेत्र में इस काल में भी आगमोक्त समाचारी के पालक श्री उपाध्याय विजयचंद्रजी विद्यमान है ।'' साथ-साथ में श्रीसीमंधरस्वामी उनके चारित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करते है ।

प्रभुमुख से प्रशंसा सुन चकेश्वरी देवी स्वयं उनके दर्शन करने पावागढ पधारते है । वंदन कर गुरुदेव को बताते है ''हे गुरुवर ! आप अनशन करना मत, तुम्हारे हाथ से शासन का बहुत ही उद्योग होने वाला है, तथा शासन के अनेक कार्य होने वाले है । भालेज नगर से यशोधन भणशाली श्रावक वीरप्रभु के दर्शनार्थ संघसहित पधारेगा, उसके द्वारा ही तुम्हारा पारणा होगा, उसके साथ भालेज जाने से शासन की प्रभावना होगी ।

दूसरे दिन यशोधन संघसहित वहां आया उसके द्वारा ही गुरु का पारणा हुआ, गुरु का उपदेश सुन वो बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने स्वयं ने ही गुरुदेव से विधिपक्ष स्थापित करने का आग्रह किया ।

यशोधन श्रावक के आग्रह से गुरुदेव संघसहित भालेज पधारे । यहां यशोधन श्रावक ने अपने गुरु को बहुमानपूर्वक बुलाकर उन्हें सं. ११६९ में महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पदवी दी, एवं उनका आर्यरक्षितसूरि ऐसा नाम रखने में आया । उसी वर्ष उनके उपदेश से यशोधन श्रावक ने भालेज में श्रीऋषभदेव का भव्य जिनप्रासाद बनाया और उसकी प्रतिष्ठा की । इस अवसर पर वि.सं. ११६९ में विधिपक्ष मच्छ की प्रगटरुप से स्थापना हुई ।

विशाल जनसमुदाय के जयघोष के साथ इस तरह से वि.सं. ११६९ में विधिपक्षगच्छ की प्रगटरुप से स्थापना हुई । आर्यरक्षितसूरि इस गच्छ के प्रणेता एवं प्रवर्तक बने । चैत्यवास के अंधकार को दूर करने वाले

प्रदीप के रुप में यह अभिनव गच्छ ने लोकहृदय में अपूर्व आदर प्राप्त किया । उसके उदय से पूर्णिमागच्छ के प्रमुख आचार्य जिसमें शीलगुणसूरि देवभद्रसूरि वगैरह मुख्य है वे अपने शिष्यो सहित उसमें स्वेच्छा से जुडे । उन्हैं यह गच्छ पूर्णिमागच्छ की संशोधित आवृति जैसा लगा । शंखेश्वरगच्छ, नाणावालगच्छ भिन्नमालगच्छ, वल्लभीगच्छ इत्यादि ने भी उसकी सामाचारी को स्वीकार किया, पूर्णिमागच्छ, सार्धपूर्णिमागच्छ एवं आगमनगच्छ ने विधिपक्षगच्छ की कितनी ही महत्वपूर्ण सामाचारी को अपनी स्वीकृति दी । इस तरह से आगम प्रणीत सिद्धांतो को जीवन में परिणित करने के माध्यम के रुप में विधिपक्षगच्छ ने सर्वत्र लोक चाहना प्राप्त की और अनेक उसमें उत्साहपूर्वक जुडे ।

गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह ने इस गच्छ को अचलगच्छ के रुप में परिचित कराया था उस संबंध में प्राचीन पट्टावलीकार एक रसप्रद आख्यायिका वर्णित करते है । राजा को संतान न होने से उसने विव्दानो के सूचन से पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया ऐसा यज्ञ जीवन में सिर्फ एक ही बार हो सकता है । यहां पर ऐसा हुआ की रात्रि में यज्ञमंडप में प्रवेश कर गयी गाय को वहां लकडे के ढेर में छुपे सांप ने दंश लिया और गाय की वहां मृत्यु हो गयी । दूसरे दिन पंडित यह दृश्य देखर दुविधा में पड गये, अब क्या हो सकता है ? यह विघ्न दूर हो तो ही यज्ञविधि आगे चल सके, सब चिंताग्रस्त थे, किसी ने सूचन दिया की यहां विराजित आर्यरक्षितसूरि चमत्कारिक पुरुष है, वे शायद मददगार हो सकते है, राजा ने सूरिजी से इस विषय में प्रार्थना की, सूरिजी ने राजा को यज्ञ का विघ्न दूर करने का वचन दिया । कहा जाता है की उन्होंने परकाय प्रवेशिनी विद्या के प्रभाव से मृत गाय को यज्ञमंडप में से जीवित बाहर निकाला । सूरि अपने वचन में अचल रहे होने के कारण सिद्धराज ने उनके समुदाय को अचलगच्छ के रुप में संबोधित किया ।

राजर्षि कुमारपाल ने उसे अंचलगच्छ के रुप में परिचित कराया इस विषय में पट्टावलीकार यह वृतांत देते है, एक बार कुमारपाल की सभा में हेमन्द्राचार्य, आर्यरक्षितसूरि वगैरह धर्मचर्चा कर रहे थे । उस समय मंत्री कपर्दि, जो चरित्रनायक का परम भक्त था, उसने उत्तरासंग के पल्लू से भूमि का प्रमार्जन करके वस्त्रांचल से वंदना की । वंदन करने की ऐसी प्रणालिका से कुमारपाल को आश्चर्य हुआ, इससे उन्होंने हेमचन्द्राचार्य को उस बारे में पूछा की ऐसी विधि क्या शास्त्रोक्त है ? कलिकाल सर्वज्ञ ने उसकी शास्त्रोक्त विधि के रुप में पहचान करायी, राजा ने विधिपक्ष को अंचलगच्छ ऐसा सूचक नाम दिया ।

उपरोक्त दोनों प्रसंगो द्वारा सिद्धराज और कुमारपाल के साथ आर्यरक्षितसूरि के संपर्क का सूचन भी मिलता ही है । सिद्धराज जैनधर्म के प्रति विशेषरुप से आकर्षित हुआ था यह तो सुविदित ही है, कुमारपाल ने तो जैनधर्म को स्वीकार भी किया था, परमार्हत् के रुप में उन्होंने इतिहास में अपूर्व कीर्ति प्राप्त की है । उनके समकालीन के रुप में आर्यरक्षित सूरि उनके समागम में आये इसमें कुछ नया नहीं है ।

आर्यरक्षितसूरि के उपदेश का प्रभाव कितना हृदयस्पर्शी था उसे दर्शाते एकाध प्रसंग की झलक लेते है । मंत्री कपर्दि के आग्रह से वे बेणप पधारे । उनके सर्वत्याग का मंगलमय और महामूल्यवान संदेश सुनकर कपर्दि की पुत्री सोमाई, जो कोटि (करोड) द्रव्य के आभूषण धारण करती थी, उसने अपनी पच्चीस सखियो सहित प्रवर्ज्या अंगीकार करने के निश्चय को जाहिर किया । सूरि के अद्भुत उपदेश का ही यह परिणाम था । सोमाई का दीक्षापर्याय का नाम समयश्री, उन्होंने बाद में महत्तरा साध्वी के रुप में उच्च स्थान आलोकित किया । समयश्री ने

अंचलगच्छ के सर्वप्रथम महत्तरा साध्वी के रुप में उज्जवल कीर्ति प्राप्त की ।

तपस्वीयो के चरणकमलो का प्रभाव भी अलग ही होता है । एक बार सिंध के पारकर प्रदेश में उग्र विहार करते आचार्य सुरपाटण नगर में पधारे । उस वक्त वहां मरकी बीमारी का उपद्रव फैला हुआ था , प्रतिदिन अनेक लोग मृत्यु के मुख में समा रहे थे आचार्य के आगमन के समाचार मिलने पर राजा महीपाल और उनका मंत्री धरण उपाश्रय में आकर उन्हैं उपद्रव का शमन करने की प्रार्थना करते है । कहा जाता है की गुरु के चरणामृत के छिडकाव से मरकी का रोग वहां से अदृश्य हो गया, इससे प्रसन्न होकर गुरु ने किमती भेंट उनके आगे धरी, निःस्पृही गुरु ने उसका अस्वीकार किया, उनके त्याग से राजा विशेष प्रभावित हुआ उसने उस धन से वहां श्रीशांतिनाथ प्रभु का जिनालय बंधवाकर उसकी प्रतिष्ठा करायी । यह प्रसंग वि.सं. ११७२ में हुआ, जैनधर्म की महिमा वहां पर बहुत फैली ।

सूरि के उपदेश से महीपाल राजा ने अपने कुंवर धर्मदास सहित जैनधर्म को स्वीकार किया । मंत्री धरण, जो जैन था, उसने अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार के साथ किया । उनके वंशज ओसवाल जाति में मिलकर मीठडिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए । धर्मदास को चंदेरी का राज्य मिला था और पृथ्वीराज चौहान उसे बहुत मानते थे, उसके मुख से प्रशंसा सुनकर पृथ्वीराज ने आर्यरक्षितसूरि को दिल्ली बुलाकर उनका सम्मान किया, उस वक्त पृथ्वीराज जैनधर्म के प्रति बहुत आकर्षित हुआ था ।

वि.सं. १२१० में सूरि विहार करते हुए भिन्नमाल के पास के रत्नपुर नगर में पधारे । वहां के राजा हमीरजी का राजकुंवर जेसंग राजमहल में से एकाएक लापता होने से पूरा नगर उसकी खोज में व्यस्त था पर सारे ही प्रयास निष्फल गये, सूरि को सिद्धपुरुष जान राजा ने उनके पैरो पर गिरकर राजकुमार को खोज देने की करुणा भरी याचना की । सूरि के संकेत से राजा को उसका कुंवर मिल गया इससे राजा हमीरजी परिवार सहित जैनधर्मानुरागी बना । उसके वंशज ओसवाल जाति में मिलकर सहसगुणा गांधी ऐसी पहचान से प्रसिद्ध हुए । जेसंगकुमार ने गुरु के उपदेश से शत्रुंजय तीर्थ का संघ निकाला, धर्मकार्यो में अनगिनत धन खर्च करके उसने लक्ष्मी को कृतार्थ किया ।

खंभात के धनाढय अरब व्यापारी सीदिक भी सुरि के अनेक अग्रसर भक्तो में से एक था । पाटण के शालवी आर्यरक्षितसूरि का उपदेश सुन उनके अनन्य भक्त बने पहले वे दिगंबर सम्प्रदाय के थे । जैनो और जैनतरों के ऐसे तो अनेक प्रसंग है, जिनके द्वारा आर्यरक्षितसूरि के अलौकिक प्रभाव का सूचन मिलता है ।

इस गच्छ के प्रति लोकहृदय में अहोभाव प्रगट हुआ, अनेक गच्छो व आचार्यो ने इस समाचारी को स्वीकार किया ।

स्थान-स्थान पर आचार्य भगवंत का विहार हुआ, अनेक राजा, महाराजा प्रभावित हुए, अनेक श्रेष्ठियों ने जिनधर्म का अंगीकार किया, आचार्य भगवंत अनेको के तारक बने ।

वि.सं. १२३६ में १०० वर्ष की आयु पूर्ण करके आर्यरक्षितसूरि ने वेणप में समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त किया, अपने पीछे १२ आचार्य सहित ३५१७ साधु-साध्वीजी भगवंतो का परिवार छोड गये ।

कलिकाल सर्वज्ञ
(१०) श्रीहेमचंद्राचार्य

गुजरात राज्य की धंधुका नगरी....

वहां बसते थे धार्मिक श्रेष्ठी चाचिंग एवं श्राविका पाहिनी....

पाहिनी की कुक्षी में गर्भ रहा तब माता ने स्वप्न में देखा की किसी दिव्य शक्ति ने अपने दो स्त्री हाथों से उसे चिंतामणीरत्न दिया और उसने वो रत्न आचार्य देवचन्द्रसूरि को सप्रेम भेंट दिया ।

वि.सं. ११४५ की कार्तिक सुद पूर्णिमा के दिन बालक का जन्म हुआ....

बुआजी ने नाम रखा चंगदेव ।

एक बार जिनालय में दर्शनार्थ पधारे हुए आचार्य देवचंद्रसूरि के बिछाये हुए आसन पर बालचंगदेव आकर बैठ गया, आचार्य भगवंत हंस पडे । बालकी भी हंसने लगा । आचार्य भगवंत को बालक में भावि महा शासन प्रभावक आचार्य के दर्शन हुए उन्होंने बालक के माता-पिता को जन्म से पहले आये स्वप्न की स्मृति कराकर प्रेरणा दी । बालक के माता-पिता ने चंगदेव को भावभीनी विदाई दी । उस समय के गुजरात के महामंत्री उदयन की व्यवहार कुशलता से खंभात नगर में आचार्य भगवंत के हाथों महासुद १४ को चंगदेव की दीक्षा हुई, अब चंगदेव बने मुनि सोमचंद्र ।

संयम जीवन पाकर, अप्रमत्त बन आराधना करने लगे । चौदहपूर्वी महात्माओ का जीवन चरित्र पढ-सुनकर ऐसा ज्ञानी बनने के भाव जागे । इसके लिये उन्होंने काश्मीर जाकर श्रुतदेवी की आराधना का संकल्प किया, गुरुभगवंत से आज्ञा मांगी, गुरुदेव ने एक संघाटक सहायक मुनि साथ में देकर आज्ञा दी । खंभात से प्रथम विहार में ही उज्जयन्तावतार नामक जिनालय में प्रभु नेमिनाथजी भगवंत की प्रतिमा के समक्ष रात के अखंड छः घंटे के सरस्वती के ध्यानमात्र से देवी प्रसन्न हो गये । सिद्ध सारस्वत होने का वरदान दिया और राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध देने की शक्ति अर्पण की, जीवन में शास्त्रसर्जन का शुभारंभ हुआ । एक बार नागपुर से विहार कर आचार्य देव पाटण पधारे... पाटण में आचार्य देवेन्द्रसूरि नामक आचार्य देव विराजमान थे, वे भी देवचंद्रसूरीश्वरजी के ही शिष्य रत्न थे । देवेंद्रसूरि और सोमचंद्र मुनि दोनो खास मित्र थे, वे साथ में ज्ञानचर्चा करते और एक -दूसरे को मन की बातें भी करते ।

एक दिन दोनों मुनिराज उपाश्रय में ज्ञानचर्चा कर रहे थे, वहां एक पुरष आकर वंदना करके वहां बैठा और स्वयं का परिचय देते हुए कहा मैं यहां पाटण का ही निवासी हूं, परंतु भारत के अनेक प्रदेशो में घूमा हुआ हूं । महात्माओ मैंने आपके गुणो की और ज्ञान की प्रशंसा सुनी है इसीलिये आपके दर्शन करने व कुछ कहने का मन है ।

आचार्य श्रीदेवेन्द्रसूरिजी ने कहा "क्या कहना है आपको ? संकोच रखे बिना जो कुछ कहना है वो कहो।"

महाराज ! आप दोनों गौड देश में जाओ, वहां अनेक मांत्रिक एवं तांत्रिक है, अनेक दिव्य शक्तियाँ धारण करने वाले महापुरुष है, वहां आप पधारो और वे शक्तियाँ प्राप्त कीजिये ।"

मुनिराजो ने उस पर विचार करके योग्य करने का कहा ।

वो व्यक्ति चला गया, दोनों मुनिओ ने एक-दूसरे से सामने देखा और उस व्यक्ति की बात तो जंची, यदि गुरुदेव अनुमति दे तो दोनों जन गौड देश में जायेंगे, ऐसा निश्चित किया ।

दोनों जनो ने गुरुदेव के पास जाकर गौड देश जाने की आज्ञा मांगी, गुरुदेव ने आशीर्वाद के साथ अनुमति दी ।

दोनो ने विहार शुरु किया, एक संध्या को खेराणु नामक गांव में दोनों आ पहुंचे, रात्रि व्यतीत करने उपाश्रय में रुके ।

वहां एक वृद्ध साधु आ पहुंचे, उंची-पूरी काया, सुंदर रुप और आंखो मे अपूर्व तेज, आते ही उन्होंने पूछा, महात्माओ ! मैं यहां रात्रिवास हेतु रह सकता हूं ?

दोनों ने कहा, पधारो महात्मा, बहुत खुशी से आप हमारी साथ रात्रिवास कीजिये हमें आनंद होगा ।

यह साधु पुरुष उन्हें कोई महान विद्यासिद्ध पुरुष लगा, दोनों ने उन्हें वंदन कर कुशलता पूछी ।

वृद्ध महात्मा ने उन्हें कहां जाने निकले हो ऐसा पूछा, दोनों ने बताया की, विद्याप्राप्ति के लिये वे गौड देश जाने निकले है ।

वृद्ध पुरुष ने कहा, विद्याप्राप्ति के लिये इतनी दूर जाने की जरुरत नहीं है, मैं तुम्हें तुम्हारी मनोवांछित विद्याये दूंगा पर मैं चल नहीं पाता हूं और मुझे गिरनार जाना है, तुम मुझे वहां पहूंचाओ, मैं तुम्हें विद्याये दूंगा ।

दोनों साधु गांव के अग्रणियो के पास जाकर डोली और उठाने वाले आदमियो की व्यवस्था कर आये ।

बाते करते-करते दोनों मित्र कब सो गये, इसका उन्हें पता ही नहीं चला । ब्रह्ममुहूर्त में जब वे जागे, श्रीनवकारमंत्र का स्मरण कर आंखे खोली तो, आश्चर्य के साथ उन्होंने अपने आप को पहाडो के बीच पाया, खेराणु से यहां किस तरह आये ? यह तो गिरनार लग रहा है, किसी विद्याशक्ति ने हमें यहां लाकर रख दिया है ।

दोनों मुनि खडे हुए, एक घटादार वृक्ष के नीचे खडे रहे, अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, अचानक उन्होंने अपने पास तेज का वर्तुल नजर आया, तीव्र प्रकाश फैल रहा था, दोनों के लिये यह एक नया आश्चर्य था ।

एक तेजस्वी देहप्रभाववाली देवी प्रगट हुई, वो दोनों महात्माओ के पास आयी, उसके मुख पर हल्की सी मुस्कान थी, वो बोली - ''मैं शासनदेवी हूं, तुम्हारे उत्कृष्ट भाग्य से आकर्षित हो यहां आयी हुं ।''

पर हमें खेराणु से यहां कौन ले आया ? सोमचंद्रमुनि ने पूछा ।

''मै ही ले आयी हूं तुम्हें '' देवी बोली ।

''और हमारे साथ रात्रिवास कर रहे वृद्ध महात्मा कहां गये ?''

''वो मैं ही थी, तुम्हारी विद्याओ के प्रति की तीव्र अभिलाषा जानकर, उस रुप में मैं तुम्हें मिली थी, मै तुम्हे गिरनार तीर्थ में ले आयी हुं, इस तीर्थ के अधिपति है भगवान नेमनाथ ।

''महात्माओ ! यह पहाड अद्भूत है, यहां अनेक दिव्य औषधियाँ है । यहां की गयी मंत्रसाधना जल्दी सिद्ध होती है । मै तुम्हें कितनी ही दिव्य औषधियाँ बताऊंगी और सुनते ही सिद्ध हो जाय ऐसे दो मंत्र दुंगी ।''

एक मंत्र से देवो को बुलाया जा सकेगा और दूसरे एक मंत्र से राजा-महाराज वश में हो जायेंगे । तुम्हें ये दो मंत्र मैं दे रही हुं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ।

शासनदेवी ने वो दो मंत्र सुनाये, सुनाकर कहा ''चलो, तुम्हें कितनी ही दिव्य औषधियां बताऊं, तुम वे बीन लेना, वे औषधियां उन निश्चित रोगो पर तत्काल असर करने वाली है ।

अभी सूर्योदय हुआ नहीं था, दोनों महात्माओ ने कितनी ही औषधियाँ एकत्रित कर ली ।

देवी ने कहा, ''तुम्हें जो दो मंत्र सुनाये है, वे भूल नहीं जाओ इसके लिये तुम यह अमृत पी जाओ ।''

देवी ने अमृत से भरा कमंडल उनके आगे धरा ।

देवेन्द्रसूरि ने वो पीने को मना किया, कारण कि अभी रात्रि का समय था । सोमचंद्र समयज्ञ थे, नियम और अपवाद के जानकार थे, वे तुरंत ही सारा अमृत गटगटा गये, दोनों मंत्र सोमचंद्रमुनि की स्मृति में अंकित हो गये, देवेन्द्रसूरीजी वे दोनों मंत्र भूल गये ।

शासनदेवी ने दोनों महानुभावो को मंत्रशक्ति से उठाकर पाटण में उनके गुरुदेव देवचंद्रसूरीजी के पास रख दिया और शासनदेवी अदृश्य हो गयी ।

सोमचंद्रमुनिवर की दृष्टि से नागपुर निवासी धनद श्रेष्ठि के आंगन में दबी हुई सोने की लगडीया जो उनके पापोदय से काला कोयला बन गयी थी, फिर से सुवर्णमय बन गयी । ऐसी लब्धि के स्वामी सोमचंद्रमुनि को गुरुदेव की प्रेरणा से पाटण संघ ने छोटे से दीक्षा पर्याय में ही पदवी प्रदान की । समस्त गुजरात ने ससम्मान यह बात स्वीकार ली ।

पाटण के राजा सिद्धराज जयसिंह के आग्रह से एक ही वर्ष में ''सिध्दहेम'' व्याकरण की रचाना की, सवा लाख श्लोक प्रमाण वाले ग्रंथ को हाथी की अंबाडी पर रखकर शोभायात्रा निकाली गयी । ३०० नकल करने वालो को बैठाकर देश के कोने-कोने में इसकी नकल भेजने में आयी ।

सिध्दराज के द्वेषपात्र कुमारपाल को तीन बार अकाल मौत से बचाकर गुजरात का राजा बनाया । जिन्होंने अठ्ठारह देशो में अमारि-प्रवर्तन की घोषणा करायी । राजा बने कुमारपाल ने गुरभक्ति से पाटण में ''त्रिभुवनपाल चैत्य'' नाम का प्रथम जिनालय बनाया । फिर बत्तीस दांतो से किये मांसभक्षण के प्रायश्चितरुप ३२ जिनालय बंधाये ।

सुंदर साहित्यसर्जन कर सर्वत्र ज्ञानभंडार बनाये । प्रायः साढे तीन करोड श्लोक का सर्जन किया । माता साध्वीजी की पावन स्मृति में एक करोड नवकारमंत्र के जाप का संकल्प किया था । कलिकाल सर्वज्ञ जैसा विशेषण धारक महाज्ञानी भगवंत ने भी नवकारमंत्र की अद्‌भुत आराधना कर विश्व को उसके महत्व का परिचय कराया । योगविद्या का परिचय कराने उन्होंने व्याख्यान की पाट से अद्धर आकाश में स्थिर रहकर प्रवचन दिया था । कुमारपाल राजा की श्रद्धा को मजबूत करने समवसरण में विराजमान प्रभुजी के तथा उनके पूर्वजो के दर्शन करवाकर उनके मुख से जैनधर्म की प्रशंसा करवायी थी । कलिकाल सर्वज्ञ ने नवकारमंत्र में ''होई मंगलं'' उसी तरह भाद्रपद सुद पंचमी की संवत्सरी को अपनी स्वीकृति प्रदान की थी ।

जब उन्हें लगा की उनका अंत समय नजदीक है तब उन्होंने संघ को, शिष्यो को, राजा को सब को आमंत्रित करके अंतिम हितशिक्षा दी, सभी से क्षमायाचना कर योगींद्र की तरह अनशन व्रत धारण कर, श्रीवीतराग की स्तुति करते हुए देहत्याग किया ।

श्रीहेमचंद्राचार्य का जन्म संवत ११४५ में, दीक्षा ११५६ में, सूरीपद ११६६ में और स्वर्गवास संवत १२२९ में नोंध किया गया है । कोटि-कोटि वंदन हो ऐसे महान सूरीश्वरजी के चरणो में ।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा महावीरस्वामी को एक साधक ने प्रश्न किया, '' प्रभो ! मोक्ष का मार्ग क्या है ? ''

मीठी-मधुर वाणी में परमात्मा ने जवाब देते हुए कहा, '' साधक ! मोक्ष का मार्ग दो नहीं, एक ही है और वो ज्ञान एवं क्रिया द्वारा प्राप्त होता है । ''

साधक जिज्ञासापूर्वक आगे प्रश्न करता है '' प्रभु ! क्रिया के बिना सिर्फ ज्ञान से ही मोक्ष नहीं मिल सकता ? ''

प्रभु ने जवाब देते हुए बताया - हे वत्स ! किसी भी स्थान पर पहूँचना हो तो आंख एवं पैर दोनों की जरुरत होती है । आंख के बिना व्यक्ति आडा-तेडा टकराता है और निश्चित या इच्छित स्थान पर नहीं पहुँच सकता । उसी तरह आंख हो पर पैर नहीं हो तो मार्ग को जान सकता है, पर उस स्थान पर पहुँच नहीं सकता । जैसे व्यवहार में यह बात सच है, वैसे ही यह नियम अध्यात्मिक क्षेत्र में भी लागु पडता है । ज्ञान यह आंख की स्थान पर है और क्रिया यह पैर के स्थान पर है ।

एक व्यक्ति को मुंबई से मद्रास पहुंचना है, उसके पास मद्रास संबंधित, मद्रास के मार्ग संबंधित उसी तरह मद्रास ले जाने वाली ट्रेन, बस एवं विमान आदि का संपुर्ण ज्ञान है, पर यदि वो उस दिसा में कदम न बढाये, उसके लिये जरुरी क्रिया न करे तो कभी भी मद्रास नहीं पहुंच सकता, उसी तरह जीव को मोक्ष संबंधी ज्ञान हो पर क्रिया न हो तो मोक्ष नहीं पा सकता ।

यही बात प.पू. यशोविजयजी महाराज ज्ञानसार में बताते है -

क्रियाविरहितं हन्त ! ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।
गति बिना प्रज्ञापि, नान्पोतिपुरमीप्सितम् ।।

अरे ! क्रिया रहित अकेला ज्ञान मोक्षरुपी फल साधने में असमर्थ है, मार्ग का जानकार भी चरणक्रिया बिना (चले बिना) इच्छित स्थान को नहीं पाता है ।

जैसे क्रिया बिना ज्ञान बिना काम का है वैसे ही ज्ञान बिना की क्रिया भी अधूरी है, कारण की जब तक ज्ञान नहीं है, तब तक यह जीव अज्ञान के अंधकार में भटक रहा है । सत्य मार्ग को समझ नहीं सकता.... पा नहीं सकता । न्यायविशारद प.पू. यशोविजयजी म.सा. ज्ञानसार में ज्ञानाष्टक में बताते है -

....त्यज्ञः किलाज्ञाने विष्टायामिव शुंकरः ।
ज्ञानी निमज्जतिज्ञाने मराल इव मानसे ।।

जैसे सूअर विष्टा में मग्न होता है, वैसे ही सचमुच अज्ञानी अज्ञान में मग्न है, जैसे राजहंस मानसरोवर में मग्न होता है, वैसे ही ज्ञानी ज्ञान में अत्यन्त मग्न रहता है ।

ये सारी बाते बताती है की अज्ञान में से बाहर निकलने ज्ञान की जरुरत है और ज्ञान से जानी हुई अवस्था पर पहुंचने के लिये क्रिया की आवश्यकता है ।

जहर को जहर जानने के बाद उसका त्याग करने में ही ज्ञान की सफलता है..... जहर को जहर जानने के बाद भी यदि त्याग की क्रिया न हो तो ऐसे ज्ञान का कोई अर्थ नहीं है ।

अमृत को अमृत जानने के बाद उसे पाने, प्राप्त करने का प्रयत्न करने यही क्रिया, ज्ञान को सफलता की ओर खींच ले जाती है ।

पर वर्तमान विश्व का निरीक्षण करने में आये तो आराधना करते जीव तीन प्रकार के नजर आते है, कितने ही केवलज्ञान की बातें करते है, आचरण में कुछ भी नहीं होता, कितने ही व्यक्ति सिर्फ जड क्रियायें ही करते हैं, उनके

पास ज्ञान का अभाव होता है, बहुत ही विरल विभूतिया ऐसी होती है जो ज्ञान और क्रिया का सुंदर समन्वय करके जीवन को धन्य बनाती है.....मानव जीवन को सफल बनाती है ।

अध्यात्मज्ञानी श्रीमद् राजचंद्र यही बात समझाते हुए बताते है की -

कोई क्रिया जड थई रह्या. शुष्कज्ञानमां कोईः
माने मारग मोक्षनो, करुणा उपजे जोई ।
बाह्यक्रियामां राचता,अंतर भेद न कांईः
ज्ञानमार्ग निषेधता, तेह क्रियाजड आंई ।
बंध मोक्ष छे कल्पना, भाखे वाणीमांहि;
वर्ते मोहवेशमां शुष्कज्ञानी ते आंहि ।

यही बात विशेषरुप से समझाते हुए बोधामृत में श्रीब्रह्मचारीजी बताते है -

''बाह्य क्रियाओ का ज्ञानी निषेध नहीं करते हैं, उसके बजाय अंतर का भाव विशेष है पर तुम क्रिया मत करो ऐसा नहीं कहते । शुष्कज्ञानी क्रिया का निषेध करते है । ज्ञानी की आज्ञा से विरुद्ध वर्तन हो नहीं ऐसा करने का है । बहुत बार चारित्र पालन के बावजूद जीव का मोक्ष नहीं हुआ इससे कुछ चारित्र नहीं लेना ऐसा कहना नहीं है । पर उसमें कुछ रह जाता है वो भूल निकालने को कहा है । मिथ्यात्व की गाँठ छोडने को कहा है, सिर्फ क्रिया में ही रचे-पचे नहीं रहना । अकेली क्रिया से ही मोक्ष नहीं है ऐसा कहना है । इससे क्रिया नहीं करना ऐसा कहना नहीं है, पर इसमें कुछ रह जाता है वो समझाने के लिये ज्ञानी कहते है ।''

जगत में भ्रांति कराने वाले - बढाने वाले असद्गुरु है इसलिये सद्गुरु जीव को जागृत करते है कि क्रियाजड होना नहीं, शुष्कज्ञानी होना नहीं । क्रियाजड होता है वो सिर्फ क्रिया में ही रचा-पचा रहता है । क्रिया किसलिये करनी है ? इससे आत्मा का कल्याण हो रहा है या नहीं ? यह सोचे बिना सिर्फ बाह्य क्रिया करे और ज्ञान को निषेधे की ज्ञान का हमें क्या काम है ? ज्ञान का फल विरति है वो हमें आ गया है, इस तरह सिर्फ क्रिया में ही रचा रहे वो क्रियाजड है ।

कितने ही शुष्कज्ञानी है वो कहते है की आत्मा बंधी हुई नहीं है, इसलिये उसका मोक्ष भी नहीं है । आत्मा को कुछ कर्म लगते नहीं है, सिद्ध जैसी है इसलीये कुछ करना नहीं । ऐसा कहते है और वर्तन करते है मोह में वो नरक में भी जाते है । जो क्रियाजड है वो तो कुछ पुण्य बांधता भी है, पर शुष्कज्ञानी तो पाप ही बांधता है।

हमें खुद का निरीक्षण करके क्रिया की जडता में या शुष्कज्ञानी में तो हमारा नंबर नहीं है न ? यह देखने जागृत बन ज्ञानीओ ने ज्ञान क्रिया किसे कहा है यह जानने प्रयत्नशील बनते है ।

अनदिकाल से अज्ञानदशा में रहा यह जीव काया आदि की अशुद्ध क्रिया की प्रवृति से संसारचक्र के परिभ्रमण को प्राप्त करता है, पर यदि जीव अज्ञानदशा का नाश करके ज्ञान को प्राप्त करे तो अशुद्ध क्रिया के बदले विशुद्ध सत्क्रिया द्वारा इस संसार का नाश कर सकता है । इस चतुर्गतिमय संसार का नाश करने के लिये संवर एवं निर्जरायुक्त क्रिया ही आवश्यक है ।

ज्ञानी जब जब **ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः** बताते है तब तब ज्ञान का अर्थ आत्मस्वरुप सन्मुख ज्ञान दर्शन रुप उपयोग का प्रवर्तन जानना, उसी तरह क्रिया यानि आत्मस्वरुप की ओर वीर्य की प्रवृत्ि ।

हमारा जीवन मोक्ष के सम्मुख है या संसार सम्मुख है यह जानने हमारा स्वयं के उपयोग का निरीक्षण करना आवश्यक है । उपयोग कहां जाता है....कहां स्थिर होता है.....किसमें लयलीन बनता है.... कौनसी और कैसी क्रियाओ में वीर्य उल्लसीत होता है.....? इन सारे प्रश्नो का जवाब हमारे जीवन की दिशा बता देने में समर्थ है । जैसे-जैसे आत्मोपयोग की लीनता ज्ञान-दर्शन व चारित्र में बढती जायेगी वैसे वैसे परभाव का त्याग होता जायेगा.... विभाव दशा घटती जायेगी और स्वभावदशा..... स्वरुप रमणता....बढती जायेगी ।

परसंगेण बंधो, मुक्खो परभाव चयणे होई ।

पर के संग से बंध होता है, परभाव के त्याग से मोक्ष होता है ।

पर के संग के उपयोग का त्याग कर आत्मा के उपयोग को आत्मा में समा देने से ही सच्ची सिद्धि प्राप्त होती है ।